वर्ष-1, अंक-1, अक्टूबर - दिसम्बर 2023

लोकसाहित्य का सामाजिक - सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य

आशीष कुमार तिवारी
सहप्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष - हिंदी विभाग
श्री कृष्णा विश्वविद्यालय, छतरपुर (म.प्र)

लोक साहित्य लोक और साहित्य दो शब्दों से मिलकर बना है। साहित्य में वर्णित 'लोक' शब्द के अर्थ को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी जी ने बहुत ही सटीक शब्दों में व्याख्यायित करते हुए कहा है- "लोक का अर्थ नगरों एवम् गाँवों में फैली उस समूची जनता से है जो परिष्कृत, रुचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।"[1] इसी मत की सम्पुष्टि करते हुए डॉ. सत्येन्द्र कहते हैं कि "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह जीवित रहता है।"[2]

अत: यह स्पष्ट है कि लोक से तात्पर्य उस सामान्य जनता से है जिसके पास पुस्तकीय ज्ञान न होते हुए भी अपनी संस्कृति का जो पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त हुई। लोकसाहित्य में लोकमानस का हृदय बोलता है। स्मृति के सहारे जीवित रहने वाला लोकसाहित्य अनेक कण्ठों से गुजरता हुआ बनता - बिगड़ता एक सर्वमान्य लोक- स्वीकृत, लोक व्यवहृत रूप पा लेता है। अनेकों के मध्य से गुज़रते हुए भी एकता की भावना से ओतप्रोत लोक-साहित्य जन-जन को जोड़ने की क्षमता रखता है। लोक साहित्य में व्यक्ति- विशेष की नहीं; लोक की छाप रहती है। चूँकि लोक-साहित्य लिपिबद्ध कम और मौखिक अधिक रहता है, अत: साधारण जन-स्वभाव के अनुरूप उसकी भाषा भी शिष्ट साहित्यिक न होकर जन-मन की भाषा होती है। उसका शिल्प-विधान भी नैसर्गिक, निर्व्याज एवम् निर्मुक्त होता है। प्राकृतिक आभा से दीप्त इसकी अनलंकृत शैली उस वन्य-कुसुम के समान है जिसे देखने-सुनने वाले भले ही कम हों पर उनकी सुरभि-सुगन्ध चहुँ ओर मदमाती है।

लोक साहित्य के अंतर्गत रचना अनेक कंठों से अनेक रूपों में बनते और बिगड़ते हुए एक विशिष्ट और सर्वमान्य रूप धारण कर लेती है, इस तरह लोक साहित्य के अंतर्गत किसी विशिष्ट रचना की रचना प्रक्रिया समय और समाज के समानांतर चलते हुए एक लंबी सामाजिक जीवन प्रक्रिया का मान्य साहित्यिक रूप होता है । परंपरागत एवं सामूहिक प्रतिभाओं से निर्मित होने के कारण विद्वानों ने लोकसाहित्य को "अपौरुषेय" की संज्ञा दी है। इसे इस तरह भी समझा जा सकता है कि लोक साहित्य के निर्माण या इसकी रचना प्रक्रिया में जो पौरुष है, वह पौरुष प्रकृति और समाज के ताने-बाने और इनके बीच के तादाम्य में निहित मानवीय चेतना का एक रूप है।

एक प्रश्न यह भी उठता है कि आखिर लोक साहित्य के अंतर्गत किन विषयों का समावेश होता है? अथवा लोक साहित्य जीवन से जुड़े किन संदर्भों को अपने अंतर्गत समाहित करता है? अब यहाँ ध्यान देना होगा कि लोक साहित्य अगर सामाजिक और साहित्यिक चेतना का रूप है तो इसमें मूल रूप से जीवन और प्रकृति से जुड़े अनुभवों का सार होगा जो लोक मंगल, लोक रक्षक लोक धर्म के भावों से भरा होगा यह साहित्य जीवन की अनुभूतियों का सहज बयान होता है। ऋतुविद्या, स्वास्थ्यविज्ञान, कृषिविज्ञान, समाज, सामाजिक - सांस्कृतिक राजनीतिक परिस्थितियाँ, मिथक, धार्मिक और पौराणिक मान्यताएँ सभी कुछ इसके अंतर्गत समाहित होती है। जीवन की अनुभूतियों, मान्य सामाजिक नियमों एवं तत्संबंधी उपदेशात्मक बातों का बड़ा ही सहज बयान लोक गीतों या लोक गाथाओं में मिलता है।

साहित्य का समाजशास्त्र और इस साहित्यिक समाजशास्त्र का समाजशास्त्रीय अध्ययन हिन्दी साहित्य में एक नई संकल्पना रही है जिसे एक विधा के रूप में स्वीकार करने न करने का विवाद साहित्य अध्येताओं के लिए नया नहीं है। लोक साहित्य के संदर्भ में इसका अवलोकन वस्तु स्थिति को समझने का संभवतः एक नया दृष्टिकोण है, जिसकी स्वीकार्यता 'अस्वीकार्यता गंभीर साहित्यिक विश्लेषण, विवेचन और अनुसंधान का विषय है। लोक साहित्य किसी क्षेत्र विशेष में बंधा न रहकर संपूर्ण विश्व के लिए कल्याणकारी होता है। यह लोक जीवन की बहुआयामी अभिव्यक्ति का आईना है यह किसी भी राष्ट्र की बेशकीमती धरोहर है। जीवन के सुख दुख का वर्णन लोक साहित्य में नजर आता है। लोक साहित्य हमारी अनुभूतियों को उभारने में सक्षम है जन जीवन के रंग तरंग की सुगंधित लोक अनुभव लोक साहित्य में संभव है।

वर्ष-1, अंक-1, अक्टूबर - दिसम्बर 2023

लोकसाहित्य किसी खास जाति या वर्ग, सम्प्रदाय तथा देश से बंधा हुआ नहीं रहता, इसलिए आज के इस प्रजातांत्रिक और अन्तर्राष्ट्रीय सद् भावना के दौर में उसे महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना स्वाभाविक है। लोक साहित्य लोक जीवन की बहुआयामी अभिव्यक्ति है, अतः समाज तथा मानव मूल्यों की प्रतिष्ठा में इनका बहुत महत्व है। किसी समाज में प्रचलित प्रथाओं, विश्वासों, परम्पराओं तथा समाज में घटित होने वाली विभिन्न परिघटनाओं एवं व्यवहारों का सजीव एवं सरल चित्र अंकित रहता है। हमारे जीवन व्यवहारों एवं संस्कारों में अनेक अवसर पर लोकगीतों से ही पूर्णता आती है ग्राम जीवन तो बिना लोकगीतों तथा लोक गाथाओं से अधूरा ही रहता है।

लोकगीत तो किसी भी देश प्रदेश के सहेजे गए लोक विश्वासों की बेशकीमती धरोहर होते है। जीवन कोई ऐसा प्रसंग नहीं जहां लोकसाहित्य की सुनहली फसले न लहलहाती हो। हृदय का प्रत्येक स्पंदन लोक की भावभूति को नई ज्योति प्रदान करता है। लोकजीवन की कड़वी और मीठी सच्चाई इनमें सामने आ जाती है। इंसान के सुख-दुख, हास्य-रूदन, प्रेम और वैमनस्यता की रोचक दास्तान और गांव की जनता का दर्द लोकसाहित्य में अभिव्यक्त हुआ है। लोकगीतों के संबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है- "भाई से विछिन्न बहन की करूण कथा, सौत के, ननद के और सास के अकारण निक्षिप्त वाक्य बाणों से विद्ध बहू की मर्म कहानी, साहूकार, जमीदार और महाजन के सताए गरीबों की करुण पुकार, आन पर कुर्बान हो जाने वाले विस्मृत वीरों की शौर्य गाथा, अपहार्थमाण सती का वीरत्वपूर्ण आत्मघात, नई जवानी के प्रेम के प्रतिघात, प्रियतम के मिलन, विरह और मातृप्रेम के अकृत्रिम भाव इन गीतों में भरे पड़े हैं। जन्म से लेकर मरण तक के काल में और सोहाग शयन से लेकर रणक्षेत्र तक फैले हुए विशाल स्थान में सर्वत्र इन गीतों का गमन है।"[3]

जीवन की वह अनुभूति जिससे जीवन को रंग तरंग और सुगंध मिलती है वह सब लोकसाहित्य में मौजूद है। इसमें रक्त का लोहित, हरिद्रा की बडील गांठ का पीत और नवपल्लव की हरीतिमा का रंग मिलता है। बलभद्र लिखते हैं- लोकसाहित्य की परम्परा जन-जीवन से जुड़ी हुई है। जनता की सांस्कृतिक छवियाँ इसमें संचित होती है। यहाँ मइया नीम की डाल पर स्वयं हिलोरा लगाती है 'तब जाकर झूलती है। प्यास लगने पर किसी बड़े घर की नहीं, मालिन के घर जाती है जिसका संबंध बाग-बगीचे से होता है। ढोल, झाल की थाप पर यहाँ जीवन थिरकता है।

बाढ़ आईं तो भी गीत, सूखा पड़ गया है तो गीत, विवाह है तो भी गीत खेती-खलिहानी है तो भी जीवन संघर्षों की अमिट छाप है इस पर जीवनधर्मी संकल्पों की विरासत है लोकसाहित्य इस विरासत को गति देना ही लोकहित में है।[4]

सामाजिक स्तर भेद को मिटाने के लिए लोकगीतों की अहम् भूमिका रही है। पर्वो त्यौहारों, घरेलू संस्कारों, उत्सवों तथा ऋतुओं में लोककण्ठ से निकली स्वर लहरियों की मिठास में लोग जातिभेद, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब की मानसिकता को भूल जाते हैं। लोकसाहित्य में सार्वभौमिकता का गुण होता है। वह किसी एक देश या जाति या धर्म की चीज नहीं होता है। डॉ.गुप्त का मत है कि लोकसाहित्य जनपदों की अपनी अपनी लोकभाषाओं में होते हुए और जनपदीय संस्कृतियों को अपनाकर भी केवल अपने जनपदों तक सीमित नहीं रहता, वरन क्षेत्रीयता की दीवारें ला कर सर्वदेशीय हो जता है। असल में, लोकसाहित्य उन मानवीय लोक भावों और लोकानुभूतियों का साहित्य है, जो सार्वभौमिक है। भाई-बहन, ननद, भौजी, माता-पुत्री, पति-पत्नी, सास-बहू, पिता-पुत्र,प्रेमी-प्रेमिका आदि के सम्बन्धों और खासतौर पर उनमें निहित भावनाओं का चित्रण सब जगह एक-सा है। इसी प्रकार हर जनपद के गीतों के विषय, बिम्ब या चित्र, प्रतीक और शैलियाँ भी एक समान है।"[5]

लोक साहित्य जीवन के शिल्प और सौन्दर्य का प्रस्तुतीकरण है। आजादी की लड़ाई के दौरान लोक साहित्य की ऐतिहासिकता के संबंध में के.एन.पणिक्कर लिखते है- "औपनिवेशिक स्रोत के पूर्वाग्रह एवं विकृत रूप के कारण,उनके सहारे विद्रोह की असली आवाज को पहचाना नहीं जा सकता। इसके लिए एकमात्र रास्ता लोक संस्कृति के विभिन्न रूपों में इस ऐतिहासिक घटना के बारे में मौजूद मौखिक परम्परा का इस्तेमाल ही है। ये रचनाऐं अधिकतर जनपदीय बोलियों में हैं। लोक बोलियों में उसका गौरवपूर्ण स्मरण है और उसमें शरीक होने वाले स्वाधीनता सेनानियों और सेनानायकों की प्रशस्ति। बहरहाल ये ऐतिहासिक महत्व की रचनाएं है, जो साधारण जनों द्वारा रचित है।"[6]

सामाजिक अध्ययन के प्रमुख स्रोत के रूप में समाज की युगीन परम्पराओं, विचारधाराओं, मान्यताओं, रूढ़ियों और बदलते हुए परिवेश का अध्ययन करने में लोक साहित्य सहायक हो सकता है। लोक साहित्य में उपलब्ध विभिन्न तथ्यों और वर्णनों का उपयोग अब समाज और व्यक्ति के मनोविज्ञान के आंकलन में प्रयोग हो रहा है। समाज और लोक साहित्य

एक-दूसरे के पूरक हैं। समाज की दशा और दिशा का वास्तविक ज्ञान लोकगीत और लोककथाओं में मिलता है। लोकसाहित्य के महत्व पर पाश्चात्य विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए है। मानवशास्त्री डॉ. वैरियर एलबिन के अनुसार-"लोकगीत केवल अपने संगीत स्वरूप तथा वर्णय विषयों के कारण ही अहम् नहीं है वरन् उनका महत्व उससे कही बढ़कर है। इन गीतों में मानव जीवन का ब्यौरा ही नहीं है बल्कि यह वो स्थापित और अनुभूत दस्तावेज है जो हमें मानव शास्त्र की प्रामाणिक जानकारी प्रदान करते हैं।"[7] मानवशास्त्री को अपने सिद्वान्त की परख के लिए लोकगीतों के अलावा कोई बेहतरीन गवाह नहीं मिल सकता है। एन्ड्र्यू फ्लेचर का मत है कि-"यदि किसी आदमी को सभी लोकगाथाओं की रचना करने की अनुमति मिल जाती है तो उसे इस बात की फिक्र करने की जरूरत नहीं कि उस देश के कानून को कौन बनाता है।"[8] एलबिन मार्टिनेगो लिखती हैं- "लोककाव्य व्यक्तिगत या सामूहिक तीव्र भावों के प्रकाशन है। लोक कविता और कथाओं का स्रोत राष्ट्रीय जीवन के अन्तरतम से निःसृत होता है। जनता का हृदय इन गीतों और गाथाओं में ओत-प्रोत रहता है। ऐसा भी समय आता है जब कि जाति या राष्ट्रीयता की अतिशय भावना ने पूरे देश को लोककवि के रूप में परिणत कर दिया है।"[9]

लोक मनोविज्ञान को समझने के लिए लोक साहित्य मद्दगार सिद्ध होता है। ग्रामीण समुदायों में झाड़ फूक, जादू टोना और अन्य अंधविश्वासों या रिवाजों को लोक साहित्य में देख जा सकता है। लोकविद् देवेन्द्र सत्यार्थी मानते हैं कि भारत वर्ष का कोई भी चित्र भारतीय प्रथाओं, रीति रिवाज और हमारे आंतरिक जीवन की मनोवैज्ञानिक गहराई को इतने स्पष्ट तथा सशक्त ढंग से व्यक्त नहीं कर सकता, जितना कि लोकगीत कर सकते हैं। लोकगीत तो उस निर्मल दर्पण के समान हैं जिसमें जनता जनार्दन का समग्र मन, लोक भाव दिखाई देता है। लोकजीवन की अच्छाई, बुराई, सबलता, दुर्बलता, उठावट-गिरावट, स्वास्थ्यता अस्वस्थता, सदाचार-कदाचार, निर्भीकता, भीरूता, मानवता,दानवता आदि मानसिक अवस्थाओं के दर्शन लोकगीतों के अतिरिक्त और कहाँ सम्भव है।

लोकसाहित्य इतिहास के अध्ययन में भी उपयोगी होता है। लोकसाहित्य में वर्णित गीत, गाथा, कथा और मुहावरों में तत्कालीन समाज की प्रवृत्तियों का चित्रण मिलता है। डॉ. गुप्त लिखते हैं- लोकसाहित्य और इतिहास का सम्बन्ध बहुत निकट और घनिष्ठ है। लोक साहित्य में एक युग के लोक की तस्वीर रहती है, जबकि इतिहास में व्यक्तियों, विशिष्ट घटनाओं,

सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियों के समन्वित एकत्व से लोक का चित्र खड़ा होता है। कथापरक लोकगीतों और लोकगाथाओं में जनपद की उन महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन और पात्रों का चित्रण मिलता है, जिनका इतिहास तक में उल्लेख नहीं है। यदि किसी जनपद के लोक की संस्कृति और सामाजिक स्थिति की वास्तविकता का पता लगाना हो, तो लोकसाहित्य पक्षपातविहीन होने के कारण अनुशीलन का मुख्य विषय है। इसलिए किसी भी युग का लोक साहित्य उस युग के सामाजिक इतिहास का मौखिक दस्तावेज है।[10]

आज का युग कृत्रिम है। हमारी भाषा, हमारा रिवाज, हमारा विवेक, हमारी नीतिमत्ता, हमारा जीवन, सभी कृत्रिम हो गए है। खुली हवा में चलना फिरना या सोना हमारे लिए भय और लज्जा का विषय बन गए हैं। इसी प्रकार सामाजिक और कौटुम्बिक व्यवहारों में स्वाभाविक होने के लिए इसमें कुछ दम नहीं, जैसे स्वाभाविकता में मौत या सर्वनाश की आशंका हो । लोकसाहित्य के अध्ययन से तथा इसके उद्धार से हम अपनी कृत्रिमता का कवच तोड़ सकेंगे और स्वाभाविकता कह शुद्ध हवा में चल फिरकर रूपशक्ति सम्पन्न हो सकेंगे"।[11]

हिन्दी के विकास में जनपदीय भाषा एवं बोलियों का विशिष्ट योगदान रहा है। बिना लोक बोलियों के हिन्दी शब्दों की शास्त्रीय परम्परा पूर्णतः प्राप्त नहीं कर सकती है। शब्दों की ऐतिहासिक विरासत के ज्ञान के लिए लोकसाहित्य एक महत्वपूर्ण स्रोत होता है समाज में रहने वाली विभिन्न जातियों तथा कामगारों जैसे लुहार, बढ़ई, कुम्हार, गडरिया, अहीर और मछुवारे आदि जिस पारिभाषिक शब्दों का इस्तेमाल करते हैं, उनके विषय में पूरी जानकारी लोकगीत तथा लोकगाथा जैसी निधियों ही दे सकती हैं।

मुहावरे लोकोक्ति तथा कहावतों का खजाना भी लोक साहित्य में हैं। विभिन्न शब्दों के विश्लेषण से समाज और भाषा के अन्त्तसंबंधों का भी ज्ञान होता है। डॉ. गियर्सन ने अपनी पुस्तक बिहार पीजेन्ट लाईफ में अनेक जनपदीय और ग्रामीण शब्दों का संग्रह किया है। समय के साथ समाज और संस्कृति बदल जाया करती है। लेकिन शब्दों का महत्व कम नहीं होता। आज ऐसे बहुत सारे शब्द इस प्रकार के मिल जाते हैं,जो समाज व्यवहार में प्रचलन में नहीं हैं लेकिन उनसे एक समय विशेष में समाज के मानसिक दशा का पता चलता ही है। लोकसाहित्य का अध्ययन विभिन्न प्रकार के शास्त्रों के अध्ययन में सहायक सिद्ध होता है। भाषा विज्ञान के लिए तो लोकसाहित्य एक अनिवार्य उपकरण के रूप में है।

किसी क्षेत्र विशेष की भाषा के अध्ययन के लिए उस क्षेत्र की लोक परम्परा और लोकसाहित्य का अध्ययन बहुत जरूरी हो जाता है। लोकसाहित्य के द्वारा ही किसी क्षेत्र विशेष की भाषा एवं बोली की स्वाभाविकता, उपयोगिता और संरचना का प्रमाण मिलता है। लोक साहित्य लोक भाषा में निर्मित होने के कारण उसकी भाषा परिमार्जित भले ही हो, किन्तु भाषा के शब्दों का कुछ न कुछ आधार अवश्य होता है इसी आधार पर लोक भाषा के अनेक शब्दों का अर्थ जिन्हें सभ्य समाज द्वारा निरर्थक समझ लिया जाता है। लोक साहित्य के माध्यम से ढूंढा जा सकता है।

निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि लोकसाहित्य हमारे जीवन और मौलिक संस्कृति का आधार तत्व रहा है। आज देश में विकास और उत्थान के नाम पर मानवता के पोषण तत्वों के साथ जो खिलवाड़ किया जा रहा है वह मार्ग अशान्ति और विनाश का है और देर सवेर यह बात हम समझ जाएंगे लोकसाहित्य केवल गाँव या कृषि चेतना का विषय नहीं है बल्कि उसके जरिए हम अपनी जीवन शैली और सामाजिक आर्थिक ढाँचे को और ज्यादा उदार और समतावादी रूप दे सकते है। लोकसाहित्य हमारी अनुभूतियों को उभारने में सक्षम है और जीवन में कोमलता प्रेम और पारिवारिकता के लिए लोकसाहित्य को अंगीकार करना आवश्यक है जिससे मानव मूल गुणों को विस्तृत न कर बैठे।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. सत्येन्द्र / लोकसाहित्य का विज्ञान / पृ.32
2. द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद / लोकसाहित्य का अध्ययन / पृ.54
3. शर्मा, डॉ. पूर्णचन्द्रज़ / हरियाणवी साहित्य और संस्कृति / पृ.85
4. शर्मा, डॉ. पूर्णचन्द्रज़ / हरियाणवी साहित्य और संस्कृति / पृ.46
5. गुप्त, डॉ.नर्मदाप्रसाद / बुन्देली लोक साहित्य : परम्परा और इतिहास / पृ.39
6. गुप्त, डॉ. नर्मदाप्रसाद / बुन्देली लोक साहित्य : परम्परा और इतिहास / पृ.31
7. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव / लोकसाहित्य की भूमिका / पृ.271
8. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव / लोकसाहित्य की भूमिका / पृ. 271-272
9. उपाध्याय, डॉ. कृष्णदेव / लोकसाहित्य की भूमिका / पृ.44
10. सत्यार्थी, देवेन्द्र / बेला फूले आधी रात / पृ.98
11. गुप्त, डॉ.महेश / लोकसाहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन / पृ.26